गाडगे बाबा

लोक सेवा के कर्मयोगी



प्रो. डॉ. विमलकीर्ति

गाडगे बाबा

लोक सेवा के कर्मयोगी

प्रो. डॉ. विमलकीर्ति



गाडगे बाबा

जनसेवा का असामान्य आदर्श गाडगे बाबा

अक्षरों का ज्ञान होने का झूठा अहंकार रखने वालों को बड़े-बड़े घर, महल, बाड़े, जमीन-जायदाद, सत्ता, पद-प्रतिष्ठा होने का घमण्ड रखने वालों को शर्मिंदा करने की योग्यता जिनके पास थी वे गाडगे बाबा आज भी, इस आधुनिक समाज में निश्चित रूप से एक आदर्श के रूप हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यदि यह कहा जाए कि तथाकथित उच्च जातियों के सदियों के इतिहास में गाडगे बाबा जैसा व्यक्ति पैदा नहीं हुआ तो यह बात इतिहास के विरोधी नहीं होगी। वास्तव में गाडगे बाबा का जीवन चरित्र है ही उसी प्रकार का।

गाडगे बाबा के चरित्र लेखक प्रबोधनकार ठाकरे ने अपनी किताब की प्रस्तावना में गाडगे बाबा को समाजवादी सत्यशोधक कहा है। उन्होंने गाडगे बाबा पर लिखी गई अपनी किताब का नाम ही 'लोकहितवादी दानोद्धारक कर्मयोगा संत श्री गाडगे बाबा (1952)' रखा है। प्रबोधनकार ठाकरे (केशव सीताराम) की गाडगे बाबा के जीवन और कार्य पर लिखी यह पहली किताब है। इसके बाद कई लोगों ने उन पर किताबें लिखी हैं और उनके कार्य तथा विचारों को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया है। मराठी के प्रसिद्ध लेखक, साहित्यकार गो. नी. दाण्डेकर ने भी 'श्री गाडगे महाराज' नाम से एक किताब लिखकर सन् 1976 में प्रकाशित की। उन्होंने भी अपनी इस किताब में गाडगे बाबा के समाजोपयोगी जीवन और कार्यों का मूल्यांकन करने का प्रयास किया है। डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर भी गाडगे बाबा के कार्यों से बड़े प्रभावित थे। उन दोनों में जीवन के अन्तिम समय तक गहरा सम्पर्क और सम्बन्ध रहा है।

गाडगे बाबा के जीवन की अपनी एक बड़ी रोचक कहानी है। उनका जन्म विदर्भ के अमरावती जिले के एक गांव में हुआ था। वे एक धोबी परिवार में पैदा हुए थे लेकिन उनके

परिवार में खेती-किसानी का काम होता था। महाराष्ट्र में धोबी एक पिछड़ी जाति मानी जाती है और महाराष्ट्र के बारह बलुतेदारों (गांव मजदूर) में से एक है। गांव-देहातों में पूरे देश में कम-ज्यादा एक जैसी ही स्थिति होती थी और आज भी है। भारत के गांव-देहातों में जातिभेद छुआछूत का बोलबाला था, धार्मिक अन्धश्रद्धा, रूढ़ि-परम्पराएँ फैली हुई थीं, मांस-मटन, शराब की महफिलें आदि बातें आम थीं और आज भी हैं। गाडगे बाबा इसी प्रकार की स्थिति में पैदा हुए थे। उनका जन्म सन् 1876 में हुआ था। इस समय तक गांव-देहातों में शिक्षा का कोई प्रचार-प्रसार नहीं था, पाठशालाएँ नहीं थीं। इसलिए बचपन में गाडगे बाबा का लिखना-पढ़ना सीखने का सवाल ही नहीं था।



गाडगे बाबा का बचपन का नाम 'डेबूजी' था। वे आज की तरह किसी पाठशाला में नहीं पढ़े लेकिन उनकी पढ़ाई की पाठशाला चार दीवारों वाला कमरा नहीं था। उनकी पाठशाला थी खुला भारतीय समाज। इस समाज में डेबू जी (गाडगे बाबा) ने जो सीखा, उसको उन्होंने अपने जीवन में उतारा और लोगों को भी सिखाया। डेबू जी बचपन में गांव के अपने मित्रों के साथ ढोर चराने जाते थे। इसके लिए वे रोज बड़ी सुबह उठते थे, कोठा साफ करते थे, बासी रोटी का टुकड़ा चबाकर, घूँट भर पानी पीकर अपना सुबह का

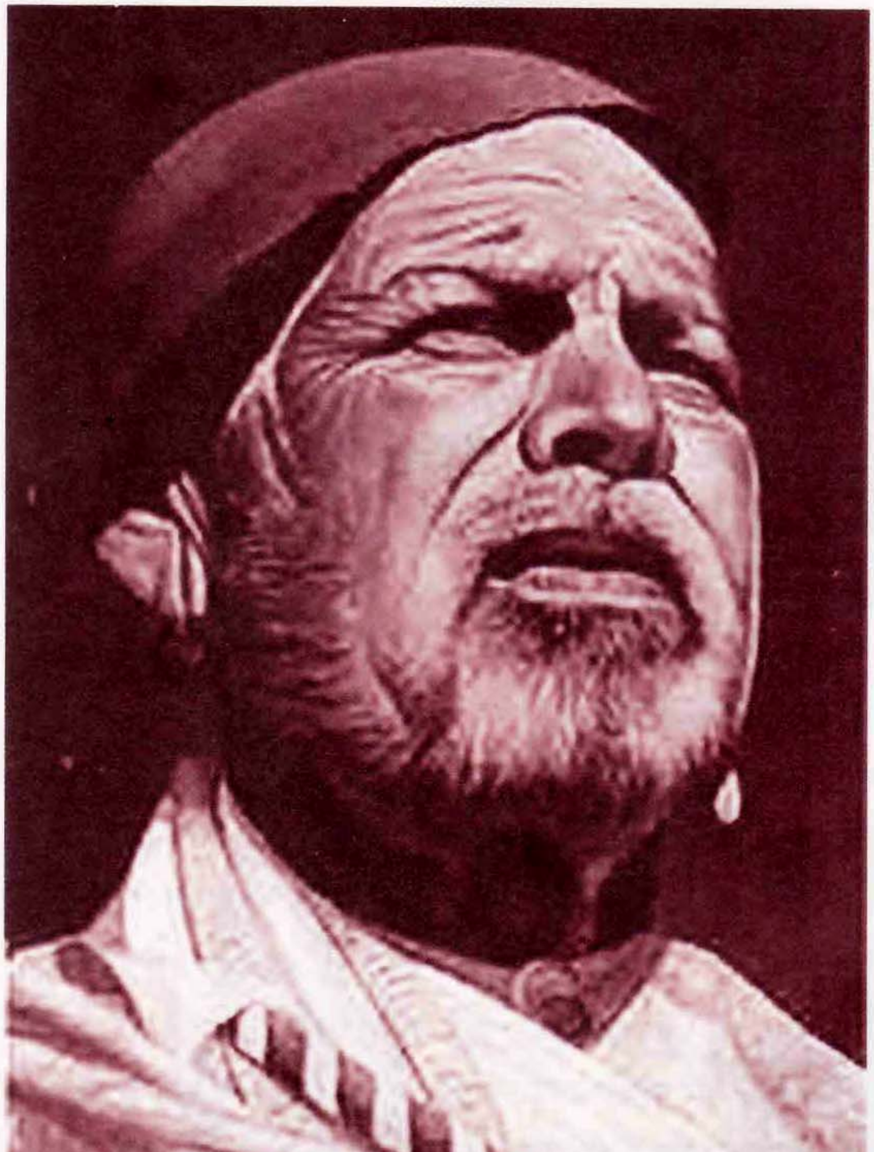
नाश्ता कर लेते थे और दोपहर के भोजन के लिए प्याज और रोटी की गठरी को बगल में दबाकर गाय, बैल और भैंसों को चराने ले जाते थे। यही उनका रोज का काम था। जंगल में गाय-भैंसें चरती थीं। दोपहर की रोटी खाने के बाद डेबू जी कभी भजन, कभी गीत गाया करते थे। उनको बचपन से ही भजन, गीत गाने का शौक था। उन्होंने अपने गाँव के अपने मित्रों को मिलाकर एक भजन-पार्टी बनायी। वे लोग नदी किनारे जाकर भजन आदि गाते थे। फिर वे अपने भजनों का सप्ताह मनाने लगे। लोग भी उनके इस तरह के आयोजन में बड़ी रुचि लेने लगे। वे लोगों से दानस्वरूप पैसा इकट्ठा करके गांव से बाहर जंगल में भोजन का कार्यक्रम आयोजित करने लगे। उनके इस तरह के आयोजनों में धार्मिकता कम थी और सामाजिकता ज्यादा दी।

डेबू जी अपने बचपन से ही किसी भी प्रकार का भेदभाव, अछूतपन, जातिवाद नहीं मानते थे लेकिन गांव में, समाज में तो जाति थी ही। डेबू जी की भजन मण्डली में बावन नाम का महार लड़का था। वह भी डेबू जी के साथ गाय-भैंसों को चराने ले जाता था। एक दिन की बात है। वह डेबू जी के कहने पर महार मुहल्ले के सभी लोगों को एक जगह बुलाकर लाया। उसी प्रकार पास-पड़ोस के अन्य लोग भी वहाँ इकट्ठा किए। डेबू जी ने वहाँ बहुत बड़ी भोजन पंगत का आयोजन किया। उसमें सभी को एक साथ बिठाया और स्वयं डेबू जी ने महार के उस लड़के को अपने पास बिठाकर भोजन किया। उन्होंने बाद में इस तरह से लोगों के लिए कई जगह सार्वजनिक भोजनदान के आयोजन शुरू किये। समाज के सभी लोगों से उनको अच्छा समर्थन भी प्राप्त होने लगा था।

अब डेबू जी की भजन मण्डली भजन गाने के साथ-साथ डेबू जी के विचारों का प्रचार भी करने लगी थी। डेबू जी समाज प्रबोधनात्मक कीर्तन भी करने लगे थे। पहले उन्होंने अपने समाज प्रबोधनात्मक कार्य की शुरुआत अपने गांव से ही की। बाद में जैसे-जैसे उनकी आयु बढ़ने लगी, वैसे-वैसे उनके समाज प्रबोधनात्मक कार्यों का विस्तार भी होने लगा था।

गाडगे बाबा अपने जीवन में किसी भी बात को असम्भव नहीं मानते थे। उनकी हर काम को सम्भव बनाने की पूरी कोशिश रहती थी। उन्होंने अच्छी तरह तैरना भी सीख लिया था और बारिश के दिनों में बाढ़ में फँसे लोगों को बाढ़ पार करवाने में उनकी मदद भी करते थे। डेबू जी खेती का काम भी अच्छी तरह जानते थे। उनको गांव-देहातों के किसानों की स्थिति के बारे में,





उनमें व्याप्त फिजूलखर्ची के बारे में भी अच्छी जानकारी थी। वे कभी-कभी किसानों की इस तरह की फिजूलखर्ची का विरोध भी करते थे। क्योंकि धर्म के नाम पर, सामाजिक रिवाजों के नाम पर, सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर किसान लोग साहूकारों से, ब्राह्मण-बनियों से, मारवाड़ी गुजरातियों से उधार पैसा लेकर बाद में उनके कर्जे में डूब जाते थे। साहूकार लोग किसानों के खेत, जमीन कौड़ियों के दाम हड़प लेते थे। स्वयं डेबू जी को साहूकारों की मनमानी का बहुत बुरा अनुभव था। इसलिए डेबू जी एक तरफ साहूकार शाही का भी विरोध करते थे और दूसरी ओर सामान्य किसानों को फिजूलखर्ची से बचने की सलाह देते थे।

डेबू जी के जीवन की यह भी एक विशेषता रही है कि वे खेती-किसानी से सम्बन्धित पशुओं से बड़ा प्रेम करते थे। उनकी यह मान्यता थी कि। 'जिसके बैल अच्छे, उसकी खेती अच्छी' इस दृष्टि से

उन्होंने महाराष्ट्र में कुछ जगह गोशालाएँ बनवायी थीं उन्होंने गौशालाओं का निर्माण किसी धार्मिक भावना से नहीं किया था बल्कि वे खेती-किसानी की दृष्टि से गौशालाओं के महत्त्व को मानते थे। उन्होंने अपने जीवन में मेहनत की महत्ता को स्वीकार किया था। वे कहते थे कि, किसान न कभी बड़ा होता है, न कभी छोटा होता है। वह केवल किसान होता है। खेत की मिट्टी में मेहनत करना, मिट्टी से सोना निकालना, यही उसका काम, यही उसका धर्म और खेत उसका भगवान। बाकी के सभी देव-धर्म के पाखण्ड हैं। अमीरी और गरीबी के बारे में क्या सोचते हो, यह तो कभी धूप कभी छाँव है, बादल आते हैं, चले जाते हैं। अमीरी का घमण्ड और गरीबी की शर्म किस लिए? पूरी मेहनत से काम करना चाहिए। जो मिले उस रूखी-सूखी रोटी को खाओ और संसार में सम्मान के साथ जिओ..., इस प्रकार की बहुत ही महत्त्वपूर्ण विचारधारा का वे प्रचार-प्रसार करते थे। उनके इन शब्दों में मानवी जीवन का मौलिक दर्शन तथा चिन्तन छिपा हुआ है।

उनकी यह भी मान्यता थी कि 'हम सभी (मेहनतकश लोगों) को पहले साहूकारों के जाल से मुक्त होना जरूरी है। बाद में तेल, घी जो भी मिलेगा, खायेंगे। लेकिन जब तक कर्ज का बोझ सर पर है तब तक अमृत खाने से भी कुछ लाभ नहीं'। उनका यह विचार आज भी गरीब किसानों, खेतिहर मजदूरों, दलितों, मेहनतकश लोगों के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। डेबू जी गरीब परिवार के सामान्य किसान थे, अनपढ़ थे। वे किसी पाठशाला में पढ़ने के लिए भी कभी नहीं गये थे लेकिन उनको अन्याय के प्रति सख्त नफरत थी। उन्होंने स्वयं भी अपनी युवावस्था में उनके खेत हड़पने वाले साहूकार से दो-दो हाथ करने की पूरी तैयारी कर रखी थी। उन्होंने सामान्य किसानों को जाग्रत करने का कार्य भी शुरू कर दिया था। उनके जीवन का सिद्धान्त था कि 'स्वयं न किसी पर अन्याय करो और न किसी के अन्याय को बर्दाश्त करो।' और वे इसी के लिए जीवनभर प्रयास करते रहे। वे भारत की जातिप्रथा, छुआछूत की व्यवस्था को भी अन्याय की व्यवस्था मानते थे, क्योंकि उन्होंने स्वयं अनुभव किया था कि जब गांवों में नाम सप्ताह का आयोजन होता था और अन्धे, अपाहिज और अछूत लोगों के झुण्ड के झुण्ड भोजन के लिए गाँव-गाँव से वहाँ आते थे। हमेशा का रिवाज यह था कि सभी लोगों के भोजन के बाद बचा हुआ, जूठा भोजन उन भोजनार्थी गरीबों पर दूर से फेंक दिया जाता था। डेबू जी को इस तरह का घिनौना अमानवीय व्यवहार बर्दाश्त नहीं होता था। वे कहते थे कि भगवान का महाप्रसाद अच्छा,

साफ-सुथरा केवल हम गांववालों को ही खाना चाहिए और उन गरीबों के भाग्य में क्या यह जूठा भोजन ही है? क्या वे लोग इन्सान नहीं हैं? अच्छा रुचिकर भोजन हम लोगों को भी मिलना चाहिए, क्या ऐसा उनको नहीं लगता होगा? उनको जूठा खिलाने का हम लोगों को क्या



अधिकार है? 'अब यह नहीं चलेगा' और वे गांव के सवर्ण, धनी लोगों से कहते थे कि, 'गांव-बिरादरी का महाप्रसाद उन लोगों को सम्मान के साथ पंक्ति में बिठाकर नहीं खिलाओगे तो मैं आप लोगों में सम्मिलित नहीं होऊँगा। मैं अपने घर में अलग से भोजन बनवाकर उनकी व्यवस्था करूँगा और मैं स्वयं उनके साथ पंक्ति में बैठकर प्रसाद ग्रहण करूँगा।' यही उनकी मानवीय सोच रही है और उसका उन्होंने अपने जीवन में पूरी तरह पालन भी किया। गाडगे बाबा (डेबू जी) ने अपने सम्पूर्ण जीवन में इन्सानियत के धर्म का ही पालन किया है।



गाडगे बाबा सम्पूर्ण महाराष्ट्र में दूर-दराज के गाँवों में जाकर साफ-सफाई का, सामाजिक समानता का, मानवतावादी विचारों का प्रचार-प्रसार अपने कीर्तनों के माध्यम से करते थे। उन्होंने सार्वजनिक जीवन के लिए उपयोगी, सार्वजनिक हित के कामों को करना ही अपना जीवन ध्येय बना लिया था। फिर बारिश के दिनों में गांवों के ऊबड़-खाबड़ रास्ते हों या इस तरह के अन्य काम हों– वे स्वयं जाकर करते थे। गाँव में जहाँ कहीं कचरा पड़ा सड़ा दिखता, उसको वे स्वयं जाकर उठाकर फेंक देते थे और गांव में साफ-सफाई रहे, स्वच्छता रहे–इसका प्रयास करते थे। जो भी गलत दिखायी दे, अस्वच्छ दिखायी दे उसको स्वयं दुरुस्त करने का प्रयास करना–यही उनका जीवन कार्य था। कोई बूढ़ा व्यक्ति है, लकड़ी तोड़ रहा है, टूट नहीं रही है और गाडगे बाबा ने उसको देखा तो वे स्वयं जाकर उसकी लकड़ी तोड़ देते, बोझ से झुकी हुई बच्चेवाली महिला के बोझे को अपने सिर पर लेकर उसके घर तक पहुँचा देते। उन्होंने देखा कि किसी किसान की गाड़ी कीचड़ में फँसी है, निकल नहीं रही है, किसान परेशान है तो वे स्वयं जाकर उस गाड़ी को बाहर निकाल देते, निकालने में मदद करते और इस तरह के कामों में उनको कोई संकोच नहीं होता था।

गाडगे बाबा निरक्षर थे। उन्होंने अपने जीवन में कुछ नहीं लिखा। वे गांव-गांव जाकर कीर्तन

करते थे, लोगों का अच्छा मार्गदर्शन करते थे। आज के तथाकथित साधु-सन्तों की तरह धन-पैसा कमाना उनका उद्देश्य कभी नहीं रहा। उनके जीवन का उद्देश्य लोगों की सेवा करना ही रहा। उनका सम्पूर्ण जीवन सेवाभाव से परिपूर्ण था। उनके सामाजिक कार्यों के बारे में यदि हम विचार करें तो उनके सामाजिक कार्य, जनसेवा के कार्य निःस्वार्थ थे। उन्होंने धार्मिक स्थलों पर कई धर्मशालाएँ बनवाईं; उन्होंने अन्धे, अपाहिजों के लिए सदावर्त चलाए, नदी पर घाट बनवाए, गोरक्षण, आश्रम आदि बनवाए और लोगों की सेवा की। उन्होंने अपने जीवन में कहीं मठ, मन्दिर या पूजास्थल नहीं बनवाए। वे हमेशा फटे-पुराने चीथड़ों से बने कपड़े ही पहनते थे और हाथ में झाड़ू लेकर गाँव की सफाई का काम करते थे। उन्होंने अपनी इस प्रकार की जीवनचर्या के कारण डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर का मन मोहित कर लिया था। डॉ. पंजाबराव देशमुख, कर्मवीर भाऊराव पाटील से उनकी काफी निकटता थी। इस कर्मयोगी ने 20 दिसम्बर 1956 को अन्तिम साँस ली। उनका सम्पूर्ण जीवन आज भी हमारे लिए एक आदर्श है, एक प्रेरणा है।

कुछ विचार...

आरंभ में मनुष्य भी जानवरों की भाँति जंगलों में रहते थे। वे स्वयं अपना खयाल रखते थे। फिर उन्होंने इस मंजिल को पार किया और स्नेहपूर्वक समूह में रहना आरंभ किया। इस नई मंजिल पर उन्होंने कुछ नियमों की आवश्यकता महसूस की। यदि कुछ लोग किसी खास जगह पर आम फायदे के लिए किसी संस्था की शुरुआत करते हैं, तब वे उस संस्था के प्रबंध के लिए कुछ नियमों की आवश्यकता भी महसूस करते हैं। प्राचीन काल में जब लोगों ने साथ-साथ रहना आरंभ किया, तब उन्हें उस सामूहिक जीवन के लिए कुछ नियमों का निर्माण करना पड़ा या आम सहमतियों की ओर बढ़ना पड़ा। वे सिद्धांत ही आज 'धर्म' कहलाते हैं। उन सिद्धांतों के खिलाफ जाने से रोकने के लिए उन लोगों ने आचरण-संबंधी कुछ नियम भी बनाए थे। शायद इन नियमों और सिद्धांतों के निर्माता इस स्थिति में नहीं थे कि इन्हें तोड़ने वालों को दंडित कर सकें, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए या उनका शोषण करने के लिए। फिर उन लोगों ने सोचा कि सामान्य लोगों को तभी धोखे में रखा जा सकता है, जब आचरण के उन नियमों को ईश्वर से संबद्ध कर दिया जाए। उन्हें कहना पड़ा कि ये नियम ईश्वर द्वारा निर्मित हैं और इन्हें भंग करने वालों को वह अवश्य दंडित करेगा। यही मनुष्य की पहली गलती थी। यदि हम जानने की कोशिश करें कि किन आधारों पर ये नियम निर्मित हैं तो हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि सामयिक स्थिति, जलवायु, मनुष्य की मानसिक स्थिति (समूह की मूढ़ता और कुछ लोगों की धूर्त्तता) से ही ये नियम प्रभावित और निर्मित थे।

बाद में, जब किसी खास समूह से संबद्ध कोई सिद्धांत बदले समय और माहौल के अनुरूप नहीं रह जाता या समाज के कुछ स्वार्थी और धूर्त्त लोगों के लिए असुविधा पैदा करता है तब वे लोग उसे बदल डालने की कोशिश करते हैं। यदि अंधविश्वासी जनसाधारण उस बदलाव का हठपूर्वक विरोध करता है, तब परिवर्तन चाहने वाले लोग एक अलग समूह बना लेते हैं। वे या

तो पुराने नियमों में सुधार करते हैं या नए नियम जोड़ते हैं। परिणामस्वरूप नए धर्म का जन्म होता है। जब दो या अधिक धर्म होते हैं तब इनके अनुयायियों द्वारा घोषणा की जाती है कि उनका धर्म दूसरे धर्म से श्रेष्ठ है। इस तरह धार्मिक कलह उत्पन्न होता है।

कुछ बुद्धिमान पूर्वजों ने प्राचीन सिद्धांतों की नवीन व्याख्या कर धार्मिक संघर्षों को खत्म करने तथा सभी को संतुष्ट करने की कोशिश की है। इसके बावजूद इन कोशिशों से धर्म की शाखाओं का ही जन्म हुआ है। लोगों को इन शाखाओं से धार्मिक सिद्धांतों के वास्तविक तात्पर्य को समझने में कठिनाई ही पैदा हुई है। अभी भी धार्मिक सिद्धांतों में बदलाव, सुधार और नई-नई व्याख्या की प्रक्रिया जारी है। इसके बावजूद अब भी लोग धर्मों की प्रकृति और उनकी आवश्यकता बिलकुल नहीं समझ पाए हैं। परिणामस्वरूप धर्म को कर्मकांड ही समझा जाने लगा है।

यदि हम किसी भी धर्म से संबद्ध व्यक्ति से पूछें कि उसके धर्म के मूल सिद्धांत क्या हैं, तो वह संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाएगा। वह सिर्फ उससे संबंधित क्रियानुष्ठानों का ही विवरण देगा। धर्म के संबंध में इस प्रकार की अज्ञानता समाज में बुराइयों को ही पुष्ट करती है। कुछ लोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए जनता की इस अज्ञानता का भरसक शोषण ही करते आए हैं।

संसार के तथाकथित महान धर्मों ने मनुष्य जाति का किसी भी रूप में भला नहीं किया है। उनसे सामान्य लोगों के साथ धोखा और दुर्व्यवहार करने वाले पंडितों, पुरोहितों, धनवानों और सरकारों को ही मदद मिली है। इसके अलावा, हम पाते हैं कि धर्म समाज में अनेक तरह की बुराइयों को जन्म देते हैं। सर्वप्रथम, धर्म आदमी की बुद्धि को ही दूषित कर देता है। सभी यही सोचते हैं कि उनका धर्म ईश्वर प्रदत्त है। वे यह सोचने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं होते कि दूसरे धर्मों से संबद्ध लोग भी यही समझते हैं कि उनका धर्म भी ईश्वर द्वारा ही बनाया गया है। एक ही ब्रह्म अलग-अलग धर्मों को क्यों और कैसे उत्पन्न कर सकता है, जो आपस में एक-दूसरे से भिन्न हों। कोई भी व्यक्ति इस मूल विषय पर नहीं सोचता। धर्मों के अनुयायी और धार्मिक नेता दोनों ही समान स्थिति में हैं।

इसी से हम समझ सकते हैं कि धर्म मनुष्य के सोचने की शक्ति को कहाँ तक कुंद कर

सकता है। द्वितीयतः, धर्म लोगों को मिलाने के स्थान पर एक-दूसरे से पृथक करने में ही ज्यादा सहायक सिद्ध होता है। तृतीयतः, धर्म मनुष्य के चरित्र और आंतरिक विकास पर बल न देकर उसे बाह्याडंबर से ही संतुष्टि प्रदान कर देता है। धर्म चाहे जितना भी अच्छा क्यों न हो, अपनी प्रकृति के अनुसार वह मनुष्य को बाध्य कर देता है कि धर्म की हर बात को सत्य मानो। धर्म से संबंधित कुछ बातों या विचारों की जाँच हम नहीं कर सकते या करने की इजाजत हमें नहीं है। यदि हम किसी विचार विशेष को आँखें बंद करके सिर्फ इसलिए स्वीकारते हैं कि वह किसी धर्म विशेष से संबद्ध है तो हम उसी प्रकार अनेक दूसरे विचारों को भी स्वीकारने के लिए प्रवृत्त होंगे।

इतना ही नहीं, धर्म हमें मनुष्यों और भगवान के बीच मध्यस्थता करने वाले पंडितों और पुजारियों को सर्वाधिक प्रधानता देने की भी शिक्षा देता है। हम इनकी अव्यावहारिक तथा ऊल-जलूल बातों को भी अपनी बुद्धि एवं अनुभव से प्राप्त सच्चाइयों से अधिक महत्त्व और स्वीकृति देने लगते हैं। धर्म लोगों को विश्वास दिलाता है कि खुले हाथों धन खर्च करके वे अपने पापों से मुक्ति प्राप्त कर स्वर्ग पहुँच सकते हैं। धर्म लोगों को यह विश्वास दिलाता है कि प्रार्थना द्वारा भगवान से अपने पापों के लिए क्षमा प्राप्त की जा सकती है। इसलिए वे बुरे और घृणित कार्यों में, यदि उनसे धन-प्राप्ति होती है, तो लिप्त हो जाते हैं। निकम्मे और उद्देश्यविहीन लोगों के लिए धर्म की दुनिया में काफी अवसर हैं। धर्म लोगों को कायर भी बनाता है, क्योंकि इससे स्वतंत्र सोच के लिए आत्मविश्वास कुंठित हो जाता है। यह मनुष्य को इस लायक नहीं रहने देता कि वह व्यावहारिक जीवन में सही और गलत में फर्क कर सके। यह कुछ धूर्त्त लोगों को इस योग्य बना देता है कि वे दूसरों के श्रम का लाभ उठा सकें। शैव धर्म के अनुयायियों का दावा है कि जिस क्षण उनके शरीर पर पवित्र भस्म पड़ता है, उसी क्षण वे सारे पापों से मुक्त होकर स्वर्ग के अधिकारी बन जाते हैं।

धर्म की वकालत करने वाले और असत्य, अप्रामाणिक पुराणों पर प्रवचन करने वाले खुद को शैव समझते हैं, क्योंकि वे अपने ललाट पर भभूत लगाते हैं। वे दूसरों से भी शैवत्व धारण करने की उम्मीद करते हैं। इससे हम शैव धर्म और उसकी प्रकृति को भली-भाँति समझ सकते हैं।

वैष्णवों का दावा है कि राम से बढ़ कर कोई नहीं है। यदि कोई व्यक्ति एक बार राम के नाम का उच्चारण कर लेता है तो उसके सारे पाप धुल जाते हैं।

इसी प्रकार सच्चा ईसाई होने का दावा करने वाले कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति ईसा में दृढ़ विश्वास रखता है तो वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है। इस तरह एकमात्र ईसामसीह ही मनुष्य को सारे पापों से मुक्ति प्रदान करने में सक्षम हैं।

इसी परंपरा का अनुकरण करते हुए मुस्लिम कहते हैं कि 'कुरान' खुदा द्वारा उच्चरित शब्दों का ही पूर्ण संग्रह है और समान रूप से सभी कालों एवं सभी देशों के लिए उपयुक्त है। यदि कुरान में जरा भी परिवर्तन किया जाता है तो वह परिवर्तित संस्करण इस्लाम में मान्य नहीं होगा।

इस प्रकार सभी धर्मों के लोग दावा करते हैं कि उनका धर्म ही सच्चा धर्म है और यह ईश्वर के अवतार द्वारा, ईश्वर के बेटे या फिर खुद ईश्वर द्वारा ही उत्पन्न है।

●●●

डेबूजी झींगराजी जानोरकर (13 फरवरी 1876-20 दिसंबर 1956), जिन्हें गाडगे बाबा कहा जाता है, महान संत तथा समाज सुधारक थे। उनका जन्म महाराष्ट्र के अमरावती जिले के एक धोबी परिवार में हुआ था। उन्होंने किसी स्कूल-कॉलेज में शिक्षा नहीं पाई, पर अपनी खुली आँखों से भारतीय समाज का जो अध्ययन किया वह उनके लिए जीवन निर्माणकारी साबित हुआ। बचपन से ही वे छुआछूत और जाति भेद के विरोधी थे। अपनी भजन मंडली के माध्यम से उन्होंने प्रगतिशील विचार फैलाए और असंख्य लोगों की चेतना जाग्रत की। गाडगे बाबा सेवा की प्रतिमूर्ति थे। दीन-दुखियों की सेवा करने में उन्हें आनंद आता था। उन्होंने अनेक धर्मशालाओं और घाटों का निर्माण करवाया, गोरक्षण शालाएँ स्थापित कीं तथा विकलांग लोगों के लिए सदावर्त चलाए। गाडगे बाबा आज भी समाज सेवियों के लिए प्रेरणा पुरुष बने हुए हैं।